उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।।२४।।

उत्सीदेयुः=नष्ट हो जायँ; **इमे**=ये सब; **लोकाः**=लोक; **न**=नहीं; **कुर्याम्**=करूँ; **कर्म**=कर्म; **चेत्**=यदि; **अहम्**=मैं; **संकरस्य**=वर्णसंकर का; **च**=तथा; **कर्ता**=कारण; **स्याम्**=बनूँगा; **उपहन्याम्**=मारने वाला; **इमाः**=इन सम्पूर्ण; **प्रजाः**=प्राणियों को।

अनुवाद

यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब लोक नष्ट हो जायँ और मैं वर्णसंकर का कारण बनकर सम्पूर्ण प्राणियों की शान्ति का विनाशक बनूँ।।२४।।

तात्पर्य

वर्णसंकर सामाजिक शान्ति में विघ्न उपस्थित करते हैं। इस सामाजिक उपद्रव के निवारणार्थ ऐसे विधि-नियमों का विधान है, जिनसे जनता स्वतः शांति तथा परमार्थ के लिए व्यवस्थित हो सके। जब भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं तो इन महत्त्वपूर्ण कर्मों की गरिमा और महिमा को बनाए रखने के लिए वे स्वयं भी इनका पालन करते हैं। प्रभु सब जीवों के पिता हैं, इसलिए यदि जीव पथभ्रान्त हो जाय तो इसका दायित्त्व एक प्रकार से उन्हीं पर है। अतएव जब-जब समाज में व्यापक रूप से धर्म की उपेक्षा होने लगती है, तब-तब श्रीभगवान् स्वयं अवतरित होकर समाज-सुधार करते हैं। परन्तु यह ध्यान रखने योग्य है कि हमें श्रीभगवान् के चरणचिह्नों का अनुसरण ही करना है, उनका अनुकरण करने में हम बिल्कुल असमर्थ हैं। 'अनुसरण' तथा 'अनुकरण' में गम्भीर भेद है। भगवान् श्रीकृष्ण की गोवर्धन-धारण लीला का हम अनुकरण नहीं कर सकते। मानव के लिए यह करना असम्भव है। इससे सिद्ध होता है कि उनकी अतिमानवीय लीला का कदापि अनुकरण न करते हुए उनकी शिक्षा का नित्य अनुसरण करना चाहिए। श्रीमद्भागवत में कहा है:

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्।।
ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत्।।

"श्रीभगवान् एवं उनके शक्ति-निक्षिप्त सेवकों की शिक्षा ही आशरणीय है। उनकी सम्पूर्ण शिक्षा हमारे लिए कल्याणकारी है। अतः बुद्धिमान् निस्सन्देह उसका यथारूप पालन करता है, पर उनके समान आचरण करने का प्रयत्न कभी न करे। शिव के समान विषसागर पीने का प्रयास कोई न करे।" (श्रीमद्भागवत १०.३३.३१-३२)

यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि जो प्रभाकर-भास्कर की गति के भी नियन्ता हैं, उन ईश्वरों की स्थिति हमसे कहीं श्रेष्ठ है। ईश्वरशक्ति के अभाव में